अपने विरुद्ध

हिन्दी ADDA

नवनीत मिश्र

अपने विरुद्ध

'जाओ, अब अपने घर जाओ', मैं भी तो गई थी अपने भैया की शादी में। मैंने देखा था कि कैसे भाभी की माँ ने अपनी रुलाई के आवेग के बीच एक-एक शब्द किसी तरह

जोड़ कर यह छोटा सा वाक्य पूरा किया था, जिसे सुन कर विदा हो रही भाभी ने आश्चर्यचकित निगाहों से अपनी माँ को देखा और उनकी कलाइयों को अपने हाथों में कस कर जकड़ लिया। भाभी 'नहीं-नहीं' की मुद्रा में सिर हिलाते हुए बिलख-बिलख कर रोने लगीं जैसे कोई अपने कहे को अनकहा करने की कोशिश करता हो।

'लेकिन अम्मा, हम जाएँ कैसे?' भाभी, अम्मा से एक ऐसा सवाल पूछ रही थीं जिसका जवाब किसी अम्मा के पास कभी नहीं रहा। अम्मा ने भी अपनी अम्मा से यही सवाल पूछा होगा और उस दिन उनकी बेटी उनसे वही सवाल पूछ रही थी।

ऐसे कारुणिक समय में जब अपनी कोख की जायी को दूसरे घर भेजते कलेजा मुँह को आने लगता है, अम्मा ने अपने आप को सब तरफ से समेट कर, जैसे इसी क्षण के लिए सँभाल कर रखा एक बहुत पुराना पल अपने आँचल की गाँठ से खोल कर निकाला और विदा होती बेटी को थमा दिया।

भाभी के अपनी माँ से कातर ढंग से पूछे गए सवाल कि, 'लेकिन, हम जाएँ कैसे?' ने मेरी भी हिचकियाँ बाँध दी थीं। हर कुँवारी लड़की को किसी की भी विदाई में अपनी विदाई दीख पड़ती है। भाभी के मायके में इस बात को याद करके अक्सर मजाक होता रहता कि सौभाग्या की विदाई के समय रोनेवालों में उसकी ननद भी शामिल थी।

जरा दूर चलने के बाद मैं कार की अगली सीट छोड़ कर पीछे भैया और भाभी के बीच आ गई थी और सुबकती भाभी का सिर अपनी गोद में लेकर थपकती रही। वह मेरी आत्मिक देह भाषा थी जो उन क्षणों में भाभी के पोर-पोर पर लिखी जाती रही। एक-सवा घंटे का सफर पूरा होते-होते मैं भाभी की और भाभी मेरी पक्की सहेलियाँ बन चुकी थीं। 'कुछ चाहिये भाभी?' कुछ शांत हो जाने पर मैंने झुक कर अपना मुँह उनके कान के पास ले जाकर धीमे से पूछा।

'पेप्सी मिलेगी?' भाभी ने बच्चों की-सी सहजता से पूछा।

'अच्छा जी, अभी तो रो-रो कर आसमान सिर पर उठाया जा रहा था और घर से कुल जमा बीस किलोमीटर दूर होते ही पेप्सी याद आने लगी', मैने भाभी की चिबुक को अपनी ओर घुमाते हुए कुछ ऊँची आवाज में कहा तो उन्होंने अपनी खनकती हुई कलाई उठा कर अपनी मेंहदी रची हथेली मेरे मुख पर रख दी और चुप रहने के लिए बरजती आँखों से मुझे देखा। उसके तुरन्त बाद उन्होंने जिस तरह से मुझे देखा उस निगाह में भैया की उपस्थिति में ऐसी बात न कहने के लिए प्रार्थना भी शामिल हो गई थी। देख कर लगता था कि भाभी, पुराने जमाने की गीताबाली से किसी तरह कम नहीं

थीं जो गाने की एक लाइन में गाए गए कितने ही अलग-अलग भावों को एक के बाद एक चेहरे पर प्रदर्शित करने में महारत रखती थीं।

भैया कुछ न सुनने का ढोंग करते हुए खिड़की के बाहर देखने लगे हालाँकि उनके होठों पर उतर आई मुस्कान उनकी अपनाई गई मुद्रा का जरा भी साथ नहीं दे रही थी। जरा देर बाद हम दोनों को आजाद छोड़ कर वह खुद ही आगे ड्राइवर के पासवाली सीट पर जा कर बैठ गए। उनके आगे की सीट पर जाते ही हम ननद-भाभी को खुसुर-फुसुर करने की पूरी छूट मिल गई थी।

भाभी की उम्र उस समय चार-साढ़े चार की थी। अपनी माँ के साथ किसी शादी में गई थीं। एक तो वह वैसे ही बहुत गोरी, सुन्दर और गोलू-गोलू-सी थीं ऊपर से शरारा पहन कर किसी भी जगह कमर मटकाने के लिए हमेशा तैयार रहतीं। हर जगह जहाँ कहीं गाने-बजाने के लिए औरतें जुटतीं, सौभाग्या-सौभाग्या की आवाजें पहले लगने लगतीं।

तो, भाभी अपनी माँ के साथ ऐसी ही किसी शादी में गई हुई थीं। विवाह के सारे काम सम्पन्न होने के बाद विदाई का समय आया। लड़की के माता-पिता और सारी औरतें रो-रो कर बिटिया को विदा कर रही थीं।

'अम्मा, हम अपने घर कब जाएँगे?' तभी अचानक नन्हीं सी सौभाग्या ने अपनी माँ से पूछा, जिसको सुन कर सब लोग रोना छोड़ ताली पीट-पीट कर हँसने लगे। विदाई का सारा वातावरण ही बदल गया। सबकी जबान पर सौभाग्या का सवाल तैर रहा था कि 'अम्मा, हम अपने घर कब जाएँगे?'

'अरे तुम जरा सा पहले बता देतीं तो इसी मण्डप में तुम्हारे भी फेरे करवा देते मेरी लाडो', मोहल्ले की औरतें सौभाग्या को गोद में उठा कर नाची-नाची फिरने लगीं।

भाभी बता रही थीं कि उस नासमझ उम्र में पूछे गए मेरे सवाल को माँ ने कितने दिनों तक याद रखा और आज विदा के समय उसका उत्तर जैसा दे दिया। मेरे मन में भाभी की माँ के लिए आदरमिश्रित प्यार भर गया। बच्चे बचपन में क्या-क्या नहीं बोलते लेकिन किसी एक बात को बीस बरस तक याद रखना और अवसर आने पर उसे सटीक ढंग से रख देने की उनकी विलक्षणता पर मैं मुग्ध हो गई।

भाभी के आ जाने के बाद मुझे अनुभव हुआ कि तब तक मैं कितनी अकेली थी। मेरी दो बहिनों की शादी हो चुकी थी इसलिए भाभी का सारा प्यार सिर्फ मेरे लिए था। हम

दोनों एक-दूसरे के हाथ से काम छीनते रहते, रसोई में साथ रहते, बाजार साथ जाते, आपस में अदल-बदल कर कपड़े और गहने पहनते, एक-दूसरे के माथे पर आ गई पसीने की बूँदों को बिन्दी बचाते हुए अपनी साड़ी या दुपट्टे के छोर से पोंछते, एक-दूसरे की गलतियों को अपने सिर लेते और जैसे बिछड़ कर फिर मिल गईं दो दोस्तों की तरह एक-दूसरे पर अपने प्राण न्योछावर करते रहते। हम दोनों के पास बातों के न जाने कितने भण्डार थे जिनकी जैसे खोई हुई चाबियाँ हमारे हाथ लग गई थीं।

अपने माता-पिता की अकेली नाजों पली संतान भाभी जितनी दिखने में सुन्दर थी, उनका मन भी उतना ही सुन्दर था। पहनना-ओढ़ना उन पर खूब फबता था। 'नारि न मोहे नारि कै रूपा' की उक्ति को झुठलाती हुई मैं भाभी के सौन्दर्य पर रीझी रहती। मैं कभी-कभी उनको अपने सामने खड़ी कर लेती और कहती, 'लोग तो कपड़ों से सुन्दर दिखाई देते हैं लेकिन आप तो जिन कपड़ों को पहन लेती हैं वह कपड़े सुन्दर हो जाते हैं।' प्रशंसा सुन कर चेहरे पर उतर आया ललछौंहा संकोच उन्हें और भी कमनीय बना देता।

लेकिन तीन साल ही बीते थे कि इन बातों को याद करके हँसने और ठहाके लगाने का समय हमसे छिटक कर बहुत दूर जा खड़ा हुआ। तीन साल में हम दोनों जितना हँसे थे उसे आँसुओं के मोटे ब्याज सहित वसूल करने के लिए समय हमारे दरवाजे पर आ डटा था।

सुदर्शन से मेरे भैया की, कार एक्सीडेंट में क्षत-विक्षत हो गई देह, जिस दिन घर पर लाई गई उसके अगले दिन मुझे सवेरे इन्स्टीट्यूट में छुट्टियाँ होने के कारण घर आना था। पहाड़ टूटना किसे कहते होंगे मैंने भाभी को देख कर जाना। मेरे पहुँचने से पहले, पोस्टमार्टम के बाद अस्पताल के सफेद कपड़े में सिल कर घर लाई गई भैया की देह ने भाभी को एकदम चुप कर दिया था। इससे पहले उन्हें रुलाने की सारी कोशिशें नाकाम हो चुकी थीं। उनके कानों में, 'तुम विधवा हो गई हो' का पिघलता सीसा उँड़ेला गया, भैया की लाश के सामने खड़ा करके, 'देखो, ये मर गए हैं' की मिर्चें आँखों में झोंकी गईं और शादी के अल्बम में दोनों की तस्वीरें दिखा-दिखा कर, 'अब ये तुम्हें कभी नहीं मिलेंगे' की लाठियाँ बरसाईं गईं लेकिन पत्थर की-सी बन गई भाभी ऐसे हर प्रहार पर बीच-बीच में भीतर से उठती हूक से छटपठा उठने सिवाय किसी भी प्रतिक्रिया से दूर ही बनीं रहीं। वह चीत्कार करके रोईं तब, जब मैं घर पहुँची। 'अरे, ये देखो क्या हो गया' कह कर मुझे देखते ही भाभी विलाप करती हुई पागलों की तरह मुझसे लिपट गईं। 'उनके बिना तो हम मर जाएँगे' कहते हुए भैया की लाश पर हाथ

पटक-पटक कर चूड़ियाँ तोड़ने से मैंने उन्हें नहीं रोका, भैया की देह से लिपट कर पछाड़ खाने में मैंने कोई बाधा नहीं दी। चुपचाप, पानी की झिलमिलाती दीवार के उस पार सौभाग्या को अभाग्या बनते देखती रही, सुख से भरे दिनों का दूर से मुँह चिढ़ाना सहती रही और पके हुए फोड़े का सारा मवाद निकल जाए इसके लिए भाभी के ऊपर भैया की यादों के नश्तर चलाने की बेरहमी करती रही।

अंतिम संस्कार के बाद घर के सारे लोग गाँव आ गए थे। वह भैया के न रहने के बाद का दसवाँ दिन था।

मेरा बहुत बड़ा परिवार है। किसी काम-काज के मौके पर मेरे अपने घर-परिवार के ही इतने लोग इकट्ठा हो जाते हैं कि सबका इंतजाम करना एक सुखद असुविधा बन जाता है। मेरे एक चाचा के सात, दूसरे चाचा के पाँच और एक और चाचा के चार बेटे हैं और उन सबकी दो-दो, तीन-तीन सन्तानें। मेरे परिवार के चौंतीस-पैंतीस लोगों का एक चूल्हा होना किसी किंवदंती के रूप में प्रसिद्ध है। नौकरी की मजबूरी में भैया और भाभी शहर में बस गए हैं और मेरे लिए तो, जब तक मैं अपने घर नहीं जाती, वही मेरा घर है जहाँ मेरी भाभी रहती हों। भैया ने शहर में रहने लग जाने के बाद भी गाँव से नाता मजबूती से जोड़े रखा था। तो, उस दिन चाचाओं के पूरे परिवारों, दूर-दराज के सारे नाते-रिश्तेदारों और गाँव भर के परिचित लोगों से घर भरा हुआ था। तभी मैंने पान गुलगुलाती मोटी किनारी की सफेद धोतियों में लिपटी चार विधवाओं को आँगन में एक किनारे बैठे देखा। इनको मैंने कभी अपने घर में नहीं देखा था।

'कुँवारी और सुहागिलें सब यहाँ से हट जाएँ', उनमें से एक ने आँगन के कोने में पीक थूक कर ऊँची आवाज में कहा। उसकी आवाज में शायद गले में कफ अटके होने की वजह से एक अजीब सी खरखराहट थी। वह सुहागिनों को सुहागिलें कह रही थी और उसने अपने एक हाथ में लोढ़ा पकड़ा हुआ था।

'अब बुला लाओ बहू को बाहर' दूसरी ने पहलीवाली की आवाज सुन कर जागते हुए अपनी जगह पर बैठे ही बैठे कुछ उकताहट के साथ पता नहीं किस से कहा। अभी तक वह औरत बैठी-बैठी सो रही थी और सोते-सोते सिर एक तरफ को लटक जाने के कारण उसकी लार उसके गाल पर बह आई थी, जिसे उसने अपनी धोती के पल्लू से पोंछ लिया था।

बाकी दो औरतें भी अपनी जगह पर जरा सा कसमसाईं।

'ये कौन हैं? यहाँ क्यों आईं हैं, मम्मी?' मैं उन सफेद बुढ़ियों को देख कर आतंकित-सा महसूस कर रही थी।

'आज तुम्हारी भाभी का सिंगार होगा, तुम भीतर कमरे में चली जाओ।'

'क्यों?'

'कुँवारी कन्याओं और सुहागिनों को यह सिंगार देखना मना होता है', मम्मी ने आँसू भरी आवाज में मुझे बताया और शायद और लोगों को वहाँ से हटाने के लिए आगे बढ़ गईं जो पहलीवाली सफेद बुढ़िया की आवाज सुन कर पहले ही अन्दर के कमरों में जाने के लिए बढ़ चुकी थीं।

इसके बारे में मैं थोड़ा बहुत जानती जरूर थी लेकिन यह चल कर मेरे आँगन तक आ जाएगा, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। मैं इसके लिए जरा भी तैयार नहीं थी।

मैंने जो कुछ सुन रखा था उसके हिसाब से मैं जान गई कि जरा देर बाद आँगन में 'सिंगार' नामक, एक औरत को विधवा समूह में शामिल किए जाने का 'उत्सव' शुरू होने को है। आँगन में बैठी सफेद औरतें मुझे रक्त पिपासु चुड़ैलों जैसी दीख पड़ने लगीं जो जैसे अपने शिकार के सामने आने की प्रतीक्षा करती घात लगा कर बैठी थीं। अभी बेचारी सी बनी बैठीं ये सफेद औरतें भाभी के सामने आते ही खूँखार हो उठेंगी। ये औरतें भाभी की खूब लम्बी और गहरी सी माँग भरेंगी, खूब बड़ी सी लाल बिन्दी लगाएँगी, हाथों को कुहनियों तक चूड़ियों से भर देंगी और जितने बड़े कभी नहीं पहने उतने बड़े-बड़े बिछुए उनकी अँगुलियों में ऐसे पहना देंगी जैसे खाने के लिए लालच करने वाले किसी बच्चे को डाँटने और सबक सिखाने के लिए उसके सामने ढेर सा खाना रख दिया जाए और उससे कहा जाए, 'ले खा मरभुक्खे, कितना खाएगा।' सफेद बुढ़ियाओं का ये समूह भाभी को याद कराने आया है कि यह उनके जीवन का आखिरी सजना-सँवरना है। मेरी मम्मी भी इसे बहुत जरूरी मानती हैं ताकि जीवन में फिर कभी भाभी के मन में इन चीजों के लिए कोई ललक बाकी न रह जाए।

खूब सजा चुकने के बाद ये सफेद चुड़ैलें भाभी पर टूट पड़नेवाली थीं। भाभी के सिर पर बाल्टियों से पानी डाला जाता जिससे माँग में भरा सिन्दूर बालों,माथे और गालों को पार करके आँगन की कच्ची जमीन पर पैदा हुए कीचड़ को सिन्दूरी बनाते हुए बह निकलता। हाहाकार करती भाभी की माँग को तब तक खुरचा जाता जब तक कि वहाँ से सिन्दूरी आभा पूरी तरह से मिट नहीं जाती। ओढ़ाई गई लाल चूनर खींच कर सिन्दूरी कीच में फेंक दी जाती, अँगुलियों से बिछुए नोच लिए जाते और वह औरत

हाथ में पकड़े लोढ़े से भाभी की चूड़ियाँ फोड़ने लगती... और उसके बाद सफेद परिधान में लिपटी मेरी भाभी एक लुटी हुई, दुखियारी और सबकी दया की पात्र औरत का विज्ञापन बन कर सामने आ खड़ी होती।

मैंने अपने आसपास देखा। आज्ञाकारिणी कुँवारियाँ अपनी माँओं का कहना मानती हुई और मेरी दो बहिनों सहित सभी सुहागिनें अपने-अपने सुरक्षित सुहागों को अपने-अपने आँचल में छिपाए कमरों के भीतर दुबकी हुईं थीं। आँगन में उन चार सफेद औरतों, गाँव के रिश्ते की एक विधवा बुआ और मेरे अलावा आँगन में कोई नहीं बचा था। भाभी के कमरे से बाहर निकलने की प्रतीक्षा की जा रही थी। सबने उनको 'पूर्वजन्म के पाप' का दण्ड भोगने के लिए उनकी तरफ से पीठ फेर ली थी। आँगन में परम्पराओं के जहरीले, नुकीले दाँतोंवाली चार बाघिनें खड़ी थीं जिनके सामने फेंक दिए जाने के लिए हिरनी जैसी भाभी को मैंने मम्मी के साथ कमरे से बाहर निकलते देखा। भाभी को आँगन के बीच खड़ा करके मम्मी भी अपने कमरे में वापस लौट जानेवाली थीं, क्योंकि आखिर वह भी तो चाँद-सितारों से सजी माँग वाली सुहागिन थीं।

सिर झुकाए चली आ रही भाभी को देख कर मुझे वह दिन याद आया कि उस दिन भी भाभी की चाल कुछ-कुछ ऐसी ही थी जब वह मेरी पक्की सहेली बन चुकी थीं और घर में पहला कदम रख रही थीं।

'आप अन्दर जाइए भाभी', मैंने जोर से चीख कर कहा। मेरी आवाज सुन कर भाभी और मम्मी के पैर ठिठक गए।

'ये सब नहीं होगा यहाँ। निकालो इन चारों को घर से', मैंने अपना स्वर सामान्य से काफी ऊँचा कर लिया ताकि उसे सुन कर कमरों में दुबकी कुँवारियाँ और सुहागिनें बाहर निकल आएँ और जो कुछ मैं करना चाहती थी उसमें मुझे संख्याबल का सहयोग मिल जाए। लेकिन आँगन की तरफ खुलनेवाली खिड़कियों के पल्लों में हल्की सी दरारें पड़ जाने के अलावा कहीं कोई हलचल नहीं हुई।

'ये सिंगार तो जरूरी होता है बिटिया। विधि के लेखे को कौन मेट सका है', गाँव की एक सुहागिन मुझे समझाने के लिए मेरे सामने आई।

'आपको बड़ा शौक है सिंगार का तो जाइए, अपने घर में अपना सिंगार कीजिए जाकर', मैंने समझानेवाली सुहागिन के बहाने सभी दुबकी हुई सुहागिनों को ललकारा।

गाँव की सुहागिन, अपना सिंगार करने की मेरी बात पर फूट-फूट कर रोने लगी और अपने रोने का मुझ पर कोई असर न होता देख रोते और बड़बड़ाते चली गई। चूँकि रोने के साथ बोलना भी शामिल था इसलिए वह मुझे क्या श्राप दे रही थी मुझे समझ में नहीं आया।

'आज तेरी भाभी के साज-सिंगार का आखिरी दिन है बिटिया', मम्मी ने नाक सुड़कते हुए कहा तो चिढ़ की चिनचिनी में सारे शरीर में दौड़ गई।

'सब लोग कान खोल कर सुन लो। मेरी भाभी का मन करेगा तो वह बिन्दी भी लगाएँगी, चूड़ियाँ भी पहनेंगी और सफेद कपड़े तो हरगिज-हरगिज नहीं पहनेंगी। उनका जैसा मन कहेगा वह उसी तरह रहेंगी, इसमें किसी को अपनी टाँग अड़ाने की जरूरत नहीं है', मैंने ऊँची आवाज में, किसी हद तक चिल्लाते हुए कहा जैसे मेरी आवाज सुन कर भी मेरे साथ न खड़ी होनेवालियों को धिक्कारती हूँ।

चारों सफेद बुढ़ियाएँ 'कलयुग की बलिहारी' जैसा कुछ कहती हुई घर से चली गईं तब एक-एक करके कमरों से कुँवारियों और सुहागिनों ने निकलना शुरू किया। वे सब उनके कहे अनुसार मेरे इस साहसिक कदम के लिए मुझे अपने कंधों पर उठा लेना चाहती थीं लेकिन मुझे उन सबसे तीखी वितृष्णा हो रही थी। मैंने भाभी का हाथ पकड़ा और उन्हें लेकर कमरे में चली गई। मैंने दरवाजा भीतर से बंद कर लिया और हम दोनों एक-दूसरे से लिपट कर देर तक रोते रहे।

समय का दबाव झेलते-झेलते शोक की तनी हुई चादर कुछ मसक चली थी। मैं छुट्टियों में कुछ दिनों के लिए घर आई। हमारे मन के उल्लास-पर्व भैया अपने साथ लेते चले गए थे। छः-आठ महीनों बाद जब हम दोनों पक्की सहेलियाँ एक साथ बैठीं तो बीते दिनों तक ले जानेवाली लम्बी पगडंडियाँ सामने दीख पड़ीं जिन पर हम चल निकले।

बात चलते-चलते जहाँ आ पहुँची थी वहाँ मेरी पक्की सहेली ने मेरे एक हाथ पर अपना हाथ रखा और कुछ झिड़कते-से स्वर में कहा, 'नहीं, लड़कियों को भला कहीं इस तरह ऊँची आवाज में बोलना चाहिए? तुम ऐसा व्यवहार कर सकती हो मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी। मुझे उस दिन तुम्हारा इस तरह उन औरतों को घर से निकाल देना जरा भी अच्छा नहीं लगा, ऐसे किसी को अपमानित किया जाता है?'

जैसे कोई दोस्ती तोड़ता हो, मैंने अपना हाथ उनके हाथ से अलग कर लिया और सिर झुका कर सोचने लगी कि भाभी के पास से क्या बहाना बना कर हटूँ।

कौन जाने, हो सकता है उस क्षण तक मेरी पक्की सहेली रही भाभी को भ्रम हुआ हो कि मैं अपने उस दिन के किए पर आज शर्मिंदा हो रही हूँ।